जल ही जीवन है : दिशा और दशा

ठाकुर मोहित
रुड़की

ठीक ही कहा गया है, जल ही जीवन है। निस्संदेह, जीवन में जल का महत्व वायु के बाद सबसे ज्यादा है। वायु और जल के बिना मानव एवं पशु–जीवन तथा वनस्पतियों की कल्पना नहीं की जा सकती। जल–सा प्रवाहमान, स्वच्छ और पारदर्शी जीवन हो, तभी मानव–जीवन एक जल–सा बन सकता है। पृथ्वी के 71 प्रतिशत भू–भाग पर जल है और उसमें से 133.8 करोड़ घन कि.मी. जल सतह पर है एवं 12,900 घन कि.मी. वाष्प के रूप में उपलब्ध है। पृथ्वी पर उपलब्ध कुल जल भंडार का 96.5 प्रतिशत भाग समुद्रों में है, शेष स्वच्छ जल लगभग 2.5 प्रतिशत है जिसका अधिकांश भाग अंटार्कटिका एवं आर्कटिक क्षेत्रों एवं हिमनदों में है तथा मात्र 0.7 प्रतिशत जल ही पीने के लिए उपलब्ध है। इस प्रकार अधिकांश जल खारे जल या बर्फ के रूप में है। हमें मुख्यतः चार स्रोतों से जल मिलता है वर्षा, भूजल (भूमिगत जल), नदी का जल, समुद्र का जल (जिसमें प्रति लीटर 35 ग्राम नमक तथा 3.6 प्रतिशत ठोस अशुद्धि होती है)। जल का उपयोग मुख्यतः छः उपयोगों के लिए आवश्यक होता है जीवन–रक्षा, कृषि, उद्योग, ऊर्जा, घरेलू कार्य, एवं यातायात (जलमार्ग)। संयुक्त राष्ट्र के अनुसार एक व्यक्ति के लिए न्यूनतम पचास से सौ लीटर जल प्रतिदिन पीने, कपड़ा धोने, खाना पकाने और सफाई हेतु जरूरी है। मगर पूरे विश्व की एक तिहाई आबादी को समुचित जल नहीं मिलता। यह अनुमान है कि 2025 तक आबादी बढ़ने से विश्व के 48 देशों की लगभग 2.8 अरब जनसंख्या जल की समस्या से तबाह होगी। विश्व जल आयोग (2000) के अनुसार 2020 में विश्व में जल की काफी कमी होगी और इसके प्रमुख कारण जल प्रदूषण, जनसंख्या वृद्धि, शहरीकरण तथा अनुचित जल उपयोग/प्रबंधन तरीके हैं। ताजे जल का अधिकांश भाग बर्फ के रूप में या गहरे जलभर में है जिसका उपयोग आसानी से नहीं किया जा सकता। दूसरी समस्या यह है कि पूरे विश्व में जल की उपलब्धता एवं वितरण समान नहीं है। उदाहरणार्थ, एशिया में विश्व की 60 प्रतिशत आबादी निवास करती है जबकि विश्व में उपलब्ध जल प्रवाह का मात्र 3.6 प्रतिशत भाग ही एशिया में है। दूसरी ओर दक्षिण अमरीका में विश्व की मात्र 6 प्रतिशत आबादी रहती है जबकि वहां विश्व जलप्रवाह का 26 प्रतिशत भाग है, सिर्फ अमेजन नदी विश्व जल प्रवाह का 20 प्रतिशत योगदान देती है। यह असमान जल वितरण भारत में भी है जहां विश्व की आबादी के 17.5 प्रतिशत लोग निवास करते हैं जबकि इसके पास विश्व के क्षेत्रफल का मात्र दो प्रतिशत तथा विश्व के ताजे जल का मात्र चार प्रतिशत हिस्सा है, इस कटु सत्य को स्टॉकहोम जल सम्मेलन 2000 में निम्नलिखित बिंदुओं के रूप में स्वीकार किया गया था।

(क) विश्व की एक तिहाई आबादी किसी–किसी रूप में जल संबंधी 'तनाव' की शिकार है और यह 2025 में बढ़कर लगभग 2.8 अरब हो जाएगी।
(ख) विश्व की आबादी का 20 प्रतिशत, जो 30 देशों में निवास करती है, जल की 'कमी' की शिकार है जो 2025 तक बढ़कर 48 देशों में 30 प्रतिशत हो जाएगी।
(ग) जल प्रदूषण के कारण ताजे जल में रहने वाली 1000 मछली प्रजातियां और 1000 पक्षी प्रजातियां विलुप्ति के कगार पर हैं।
(घ) विश्व की लगभग 20 प्रतिशत आबादी को स्वच्छ पेयजल उपलब्ध नहीं है।
(ङ) विश्व के हर दूसरे व्यक्ति को (यानी आधी आबादी) पर्याप्त स्वच्छता (सैनिटेशन) सुविधाएं उपलब्ध नहीं हैं।
(च) प्रति वर्ष विश्व में 30 से 40 लाख लोग जल–जनित बीमारियों से मर जाते हैं जिनमें 20 लाख बच्चे भी शामिल हैं।

उपर्युक्त विपरीत परिस्थितियों में ही संयुक्त राष्ट्र ने 2005 से 2015 के दशक को "अंतर्राष्ट्रीय कार्यवाही दशक–जीवन के लिए जल" के रूप में घोषित किया था। इसके अलावा 22

मार्च को प्रति वर्ष 'विश्व जल दिवस' मनाया जाता है। वर्ष 2007 को भारत सरकार ने 'राष्ट्रीय जल वर्ष' घोषित किया था। भारत में जल प्रदूषण के निम्नलिखित कारण हैं।

(क) शहरी गंदगी एवं वाहित जल/अपशिष्टः–धार्मिक कुरीतियों के रूप में जली/अधजली लाशों को नदियों में प्रवाहित करना, विभिन्न मूर्तियों को विसर्जित करना आदि। इन प्रदूषित पदार्थों के कारण प्रदूषित जल के शोधन हेतु मात्र 10 प्रतिशत शहरों में शोधन संयंत्र लगाये गये है।

(ख) औद्योगिक अपशिष्टः कानपुर में गंगा के किनारे स्थित चर्म उद्योग, जूट–वस्त्र उद्योग, हुगली के तट पर कोलकाता में वस्त्र, चर्म, कागज, शराब, जूट उद्योग, बरौनी में गंगा तट पर तेलशोधन संयंत्र, सिंदरी में दामोदर नदी में खाद कारखाने से गंधक का अम्ल/अमोनिया, मथुरा में यमुना नदी में रंग कारखानों से तेजाब मिश्रित रसायन, जोधपुर–पाली बालोतरा में रंग कारखानों से रसायन अपशिष्ट, केरल में पेरियार नदी में कालीकट रेयान मिलों का अपशिष्ट, तमिलनाडु में कावेरी नदी में रेयान मिलों का अपशिष्ट, कर्नाटक के हरिहर (धारवाड़) में रेयन के लिए फाइबर बनाने के कारखाने से नदी में अपशिष्ट, कर्नाटक के कारवार में (बिनगा) कॉस्टिक सोडा कारखाने में समुद्र में दूषित गंदा जल (जिससे मछलियां मर जाती हैं) आदि।

(ग) कृषि में रासायनिक उर्वरक, कीटकाशक आदि (डीडीटी, एल्ड्रिन क्लोरोन) का प्रयोग।

(घ) रेडियोधर्मी पदार्थः– पोटैशियम 40, यूरेनियम 238, थोरियम 232, प्लूटोनियम, पोलेनियम आदि के विकिरण से भूजल का प्रदूषण।

(ड) प्राकृतिक–भौगोलिक कारणः–किसी क्षेत्र में मानक से अधिक लौह, लवण, फ्लोराइड, नाइट्रेट, मैगनीज, आर्सेनिक आदि की उपलब्धता।

खाद्य सुरक्षा का एक महत्वपूर्ण आयाम जल सुरक्षा है अर्थात् सभी व्यक्तियों को पूरे साल भर पर्याप्त मात्रा में सुरक्षित जल की उपलब्धता हो। भारतीय संविधान की धारा 21 में जीने का मूलाधिकार शामिल है, जिसका निहितार्थ है कि, हर व्यक्ति को समाज में प्रतिष्ठा से जीने का हक है, यानी उसे भोजन और जल पाने का हक है। भारत की लगभग 121 करोड़ आबादी (2011) जो पूरे विश्व की आबादी का साढ़े सत्रह प्रतिशत है, इसके पास विश्व के संपूर्ण जल का मात्र चार प्रतिशत उपलब्ध है। प्रति वर्ष 1.9 प्रतिशत की वृद्धि दर के हिसाब से भारत की जनसंख्या 2050 तक 150 करोड़ होने की संभावना है। इसके फलस्वरूप भारत की आबादी का एक बड़ा हिस्सा जल की समस्या से बुरी तरह प्रभावित होगा। 2030 तक भारत के साठ फीसदी 'जलभर' संकटग्रस्त स्थिति में पहुंच जाएंगे। वर्तमान समय (2010) में भारत पूरे विश्व में सबसे ज्यादा भूजल (25 प्रतिशत) का उपयोग करने वाला देश है। भारत प्रतिवर्ष 230 घन कि.मी. भूजल का उपयोग करता है। 1950 में यह प्रतिवर्ष मात्र 20 घन कि.मी. भूजल का उपयोग करता था। कहने का आशय यह है कि पिछले साठ वर्षों में भूजल का उपयोग भारत में ग्यारह गुना से भी ज्यादा बढ गया। पंजाब भूजल का 93.3 प्रतिशत उपयोग करता है, और हरियाणा 98 प्रतिशत भूजल का उपयोग करता है। ये दोनों प्रांत हरित क्रांति के मुख्य क्षेत्र हैं, मगर भूजल के ज्यादा दोहन के कारण वहां मिट्टी ऊसर हो गई है, जलस्तर काफी नीचे चला गया है, जल खारा हो गया है और नए खरपतवार पैदा हो गए हैं। इस भूजल का सर्वाधिक, उपयोग बोरिंग ट्यूबवेल से सिंचाई हेतु किया जाता है। भारत में दो करोड़ से अधिक बोरिंग ट्यूबवेल हैं जो संयुक्त राज्य अमरीका की ट्यूबवेलों का सौ गुना है। इस प्रकार, भले ही कई जरूरी चीजों में हम अमेरिका का मुकाबला नहीं कर पाए मगर भूजल के दोहन में हम उससे बहुत–बहुत आगे हैं। भूजल के अति दोहन होने के कारण भारत के पच्चीस प्रतिशत ब्लॉकों को भूरा या काला क्षेत्र (भूजल विहीन) घोषित कर दिया गया है। इनमें से अधिकतर क्षेत्र कठोर पहाड़ियों वाले क्षेत्र हैं। इन क्षेत्रों में आंध्र प्रदेश, गुजरात, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, राजस्थान और तमिलनाडु राज्य सम्मिलित हैं। ऐसी विषम परिस्थिति के बावजूद भारत में वर्षा जल को संरक्षित

करने की समुचित पद्धति एवं चेतना नहीं है। भारत में काफी (प्रतिवर्ष 1100–1150 मि.मी.) वर्षा होती है मगर दुर्भाग्यवश उसका 20 प्रतिशत ही संरक्षित कर उपयोग किया जाता है। जबकि इजरायल जैसे छोटे–से देश में 80 प्रतिशत वर्षा जल को संरक्षित कर लिया जाता है। भारत में जल की उपलब्धता 2001 में 1820 घन मीटर/व्यक्ति थी, जो 2025 में 1340 घन मीटर/व्यक्ति और 2050 में मात्र 1140 घन मीटर/व्यक्ति रह जाएगी। जलवायु परिवर्तन के कारण जल की उपलब्धता और विकट होने की प्रबल संभावना है। संयुक्त राष्ट्र के अंतर के प्रशासनिक जलवायु परिवर्तन पैनल (आईपीसीसी) के अनुसार 2025 में प्रति व्यक्ति ही भारत में जल की उपलब्धता एक हजार लीटर से कम हो जाएगी। अभी तक भारत में 90 प्रतिशत आबादी को ही पीने का जल उपलब्ध है। भारत सरकार पीने का जल उपलब्ध कराने हेतु सौ करोड़ डॉलर प्रतिवर्ष (यानी लगभग छः हजार करोड़ रुपये) खर्च करती है। मगर विभिन्न शोधों में पाया गया है कि केंद्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड द्वारा निर्धारित मापदंडों पर अधिकतर क्षेत्रों में जलापूर्ति खरी नहीं उतरती। विज्ञान एवं पर्यावरण केंद्र, नई दिल्ली, नामक स्वयंसेवी संस्था द्वारा किए गए शोध से यह प्रमाणित हुआ कि बोतलबंद जल और शीतल पेयों में अपशिष्ट, निर्धारित अनुज्ञेय मात्रा से काफी अधिक हैं तथा उनमें कई कीटनाशकों के तत्व भी मौजूद हैं।

उल्लेखनीय है कि विश्व की अधिकतर सभ्यताएं नदियों के किनारे विकसित हुईं। पूरे विश्व स्तर पर ताजे जल के पांच मुख्य स्रोत हैं : बर्फ के रूप में जल 240 लाख घन मीटर, तालाबों/झीलों/जलाशयों में उपलब्ध जल 2.80 लाख घन मीटर, झरनों और नदियों में उपलब्ध जल 1200 घन मीटर, मिट्टी में नमी के रूप में उपलब्ध जल 85000 घन मीटर, एवं भूजल के रूप में उपलब्ध जल छः करोड़ घन मीटर, कुल 8.43 करोड़ घन मीटर। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि पृथ्वी पर बर्फ के रूप में काफी मात्रा में जल उपलब्ध है। भारत में जल का उपयोग विभिन्न कार्यों के लिए किया जाता है, जिसमें से सबसे ज्यादा उपयोग 75 से 80 प्रतिशत कृषि के लिए किया जाता है। 6.2 प्रतिशत ऊर्जा सृजन के लिए, 5.7 प्रतिशत जल उद्योगों के लिए और मात्र 4.3 प्रतिशत जल घरेलू कार्य के लिए उपयोग में लाया जाता है। भारत में जल संकट की गहनता और व्यापकता का अंदाज निम्नलिखित तथ्यों से लगाया जा सकता है

(क) भारत के कई क्षेत्रों को 'धूसरक्षेत्र' (ग्रे एरिया) घोषित किया गया है, उ.प्र. के 97134 गांवों में से 6000 गांवों में भूजल उपलब्ध नहीं है, इसी तरह पंजाब, हरियाणा, राजस्थान, आंध्र प्रदेश, कर्नाटक, गुजरात, छत्तीसगढ़, म.प्र., बिहार के कुछ भागों में भूजल नहीं है।

(ख) राजस्थान के दस शहरों में जलापूर्ति तीन दिनों में मात्र एक बार की जाती है। भारत के 35 शहरों में एक करोड़ लोगों को पूर्व में की गई आपूर्ति से 38 प्रतिशत कम जल उपलब्ध कराया जाता है।

(घ) दिल्ली में 8300 कि.मी. की लंबाई में बिछी जल की पाइप में छेद होने के कारण रोजाना 80 करोड़ लीटर जल बहता और व्यर्थ बर्बाद होता है।

(ङ) उत्तरी गुजरात तथा सौराष्ट्र के कुछ क्षेत्रों में हर दस नए नलकूप स्थापित करने के लिए 1200 फीट गहराई तक खुदाई करने पर भी छः में चिन्हित स्थलों पर जल नहीं मिलता।

(च) चार महानगरों (यथा दिल्ली, चेन्नई, कोलकाता, मुंबई) से नब्बे करोड़ लीटर अपशिष्ट जल रोजाना प्राप्त होता है जिसमें से मात्र 30 प्रतिशत का शोधन होता है।

इतना ही नहीं, भारत में वर्षापात काफी अस्थिर, असमान एवं अपर्याप्त है जबकि लगभग आधी खेती वर्षा के जल पर निर्भर है। उदाहरणार्थ, कुल वार्षिक वर्षापात (1100 से 1150 मि.मी. औसतन) का 75 प्रतिशत वर्षा के चार महीनों में होता है जिसके कारण शेष महीनों में जल की कमी

रहती है। फिर कभी – कभी एक दो दिनों में ही एक – दो महीने की औसतन वर्षा हो जाती है जिसके कारण जल जमाव, बाढ़ जैसी समस्या पैदा हो जाती है। मेघालय के चेरापूंजी में वार्षिक वर्षापात 11400 मि.मी. है जबकि राजस्थान के जैसलमेर बीकानेर में मात्र 200 मि.मी.। भारत में वर्षा से औसतन चालीस करोड़ हेक्टेयर मीटर जल एक वर्ष में मिलता है। किंतु जल संग्रहण की पर्याप्त सुविधा न होने के कारण काफी जल (लगभग 80 प्रतिशत) संरक्षित नहीं हो पाता और समुद्र में बह जाता है अथवा नीचे जाकर भूजल के रूप में इकट्ठा होता है और कुछ जल वाष्प बनकर उड़ जाता है जो बाद में वर्षा लाता है। फिर वनों के विनाश तथा भूक्षरण के कारण भूमि के नीचे जाने वाले जल की मात्रा घट रही है। ए.एम. फोस्टर के अनुसार भूजल विकास की प्रक्रिया में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है :

(क) इसकी अच्छी गुणवत्ता शोधन खर्च की बचत करती है।
(ख) यह सूखे की अवधि में जलापूर्ति को सुरक्षा प्रदान करता है।
(ग) स्वतंत्र रूप से सार्वजनिक जलापूर्ति और निजी उपयोग के लिए यह उपयुक्त है।
(घ) पूंजीगत निवेश के रूप में जल की बढ़ती मांग के परिपेक्ष्य में महत्वपूर्ण।
(ड) झरनों और नदी के तटों तक सीमित रहने की बजाय कहीं भी आवश्यकतानुसार उपलब्ध।

इसके अलावा भूजल पारिस्थितिकीय लोकतंत्र (प्राय : सभी की जमीन में उपलब्ध) तथा भविष्य की पीढ़ियों के लिए जीने का अधिकार सुरक्षित रखता है। अभी भारत में वार्षिक वर्षापात का दस गुणा भूजल (लगभग 370 करोड़ हेक्टेयर मीटर) उपलब्ध है मगर भूजल के असमान वितरण के कारण देश के विभिन्न इलाकों में भूजल का उपयुक्त प्रयोग नहीं हो पाता है। असम, जम्मू और कश्मीर, कर्नाटक, म.प्र., महाराष्ट्र, मेघालय, ओडिशा, अरुणाचल एवं त्रिपुरा में 20 प्रतिशत से कम भूजल का उपयोग होता है। दूसरे, आंध्र प्रदेश, बिहार, गुजरात, हिमाचल प्रदेश एवं तमिलनाडु में 20 से 50 प्रतिशत भूजल का उपयोग से होता है। तीसरे, पंजाब में 93.3 प्रतिशत तथा हरियाणा में 98 प्रतिशत भूजल का उपयोग होता है। अधिक भूजल उपयोग के कारण पंजाब, हरियाणा, उ.प्र., महाराष्ट्र, कर्नाटक एवं तमिलनाडु में जलस्तर काफी नीचे चला गया है। यद्यपि विश्व में औसतन 69 प्रतिशत भूजल सिंचाई के लिए प्रयोग होता है, मगर भारत में 90 प्रतिशत भूजल का उपयोग सिंचाई में होता है। इसके अलावा बिहार, पश्चिम बंगाल, त्रिपुरा के कुछ क्षेत्रों में भूजल में आर्सेनिक की मात्रा अधिक पाए जाने से बीमारियां फैल रही हैं। कुल 17 राज्यों में भूजल में अस्वास्थ्यकर रासायनिक तत्व/धातुएं जैसे फ्लोराइड, सल्फाइड, आयरन, मैगनीज, आर्सेनिक, नाइट्रेट, क्लोराइड, जिंक, क्रोमियम आदि पाई गई हैं।

नि:संदेह, भूजल प्रदूषण मनुष्यों एवं पशु–पक्षियों/वनस्पतियों के लिए 'टाइम बम' साबित हो सकता है। पंजाब, हरियाणा एवं पश्चिमी उ.प्र. के भूजल में लवणता (salinity) बढ़ रही है इसके अलावा उद्योगों द्वारा विषैले तत्व/अपशिष्ट नदियों में बिना शोधन गिरा दिए जाते हैं, जो अंतत: भूजल में जाते हैं। नदी में प्रवाहित अपशिष्टों के कारण सतही जल भी मनुष्यों/जानवरों के पीने या नहाने के योग्य नहीं रहता तथा उससे सिंचाई करना भी घातक है, क्योंकि ये विषैले तत्व फलों, सब्जियों और खाद्यान्नों में पहुंचकर अंततः मानवों एवं जानवरों के शरीर में प्रवेश कर जाते हैं। इतना ही नहीं, घरेलू उपयोग विशेषकर नहाने, कपड़ा–बर्तन, घर आदि धोने, शौचालय में में भी भूजल का दुरुपयोग होता है। संयुक्त राष्ट्र के खाद्य एवं कृषि संगठन (एफएओ) के अनुसार 6800 गैलन जल का उपयोग एक परिवार के चार सदस्यों का एक दिन का भोजन तैयार करने में होता है। कई क्षेत्रों में भूजल के प्रदूषण के कारण छोटे किसान खेती करने में असमर्थ हो रहे हैं और फलत: वे या तो स्थानीय स्तर पर खेतों में मजदूरी कर रहे हैं अथवा शहरों में जाकर छोटे – मोटे काम कर रहे हैं। जिससे शहर में अप्रत्याशित भीड़ बढ़ रही है और वहां के सीमित साधनों यथा परिवहन, खाद्य, जलापूर्ति, स्वच्छता, स्वास्थ्य आदि पर अतिरिक्त बोझ पड़ रहा है।

राष्ट्रीय जल मिशन के कई उद्देश्य हैं: जल का संरक्षण, जल की बर्बादी को रोकना, राज्यों के भीतर और बाहर समान जल वितरण की व्यवस्था, जल उपयोग की दक्षता में 20 प्रतिशत वृद्धि, जलवायु परिवर्तन का जल स्रोतों पर होने वाले प्रभावों को आंकना आदि। जब से कृषि का औद्योगिकीकरण हो रहा है, उसमें सबसे ज्यादा जल (दस गुना) खर्च हो रहा है। इसलिए बड़े–बड़े बांध बनाए जाते हैं जिनकी अलग राम कहानी है क्योंकि वे एक बड़ी ग्रामीण आबादी को विस्थापित कर देते हैं। इसके अलावा कृषि उत्पादों के प्रसंस्करण में कई रसायन अधिक मात्रा में प्रयुक्त होते हैं जो जल के स्रोत, मिट्टी और स्वयं उत्पाद को विषैला बना देते हैं। जब से बहुराष्ट्रीय कंपनियां ठेके पर खेती करा रही है; बीज, डिब्बाबंद भोजन आदि के दाम भी बढ़ गए हैं। विदेशी नस्ल के बीजों के प्रयोग करने पर प्राय: जल और उर्वरक की मात्रा का ज्यादा मात्रा में उपयोग करना पड़ता है, तथा उनके प्रयोग से रसायनों का प्रयोग भी कई गुना बढ़ जाता है। इसके साथ ही ऐसे उन्नतशील बीजों द्वारा धान और गन्ना की खेती में जल अधिक लगता है मगर उनकी मांग बढ़ती जा रही है।

प्रारंभ में केवल महानगरों और शहरों में सार्वजनिक जलापूर्ति की जाती थी मगर बढ़ती जनसंख्या तथा शहरीकरण की तेज गति के कारण कई छोटे कस्बों, चौक–चौराहों और बड़े गांवों में भी सार्वजनिक जलापूर्ति की जाने लगी। यों तो जलापूर्ति राज्य का विषय है, मगर समस्या की गहनता एवं विकरालता के मद्देनजर केंद्र सरकार ने 1972–73 में त्वरित ग्रामीण जलापूर्ति कार्यक्रम शुरू किया था। उसमें राज्यों और संघ शासित क्षेत्रों को शत–प्रतिशत अनुदान दिया गया। सन् 1977 में विश्व स्वास्थ्य संगठन ने 'सबके लिए स्वास्थ्य' का अभियान चलाया गया तथा 1978 में लोक स्वास्थ्य पर घोषणा (अल्मा आटा में) विश्व स्तर पर की गई। तब से जलापूर्ति कार्यक्रम को मिशन दृष्टिकोण से शुरू किया गया जिससे कम लागत पर अधिकाधिक फायदा हो। 1986 में केंद्र सरकार ने तकनीकी मिशन की स्थापना की जिसका उद्देश्य छोटी–छोटी परियोजनाओं को शुरू करना तथा पीने के जल के स्रोतों से होने वाली बीमारियों को वैज्ञानिक रूप से समझना और उनका समाधान करना था। कालांतर में इसे राजीव गांधी राष्ट्रीय पेयजल मिशन का नाम दिया गया। इसका मुख्य उद्देश्य सभी अनाच्छादित गांवों (जहां पेयजल का स्रोत न हो) का पता लगाना और वहां टिकाऊ पेयजल स्रोत की व्यवस्था करना तथा ग्रामीणों को स्वच्छ पेयजल के बारे में जागरूक बनाना था।

भारत सरकार के ग्रामीण विकास मंत्रालय में पेय जलापूर्ति विभाग का गठन किया गया। 2006 में राष्ट्रीय ग्रामीण पेयजल गुणवत्ता अनुश्रवण एवं निगरानी कार्यक्रम शुरू किया गया जिसके तहत समुदायों की भागीदारी, ग्राम पंचायतों की जिम्मेदारी, ग्राम जल एवं स्वच्छता समिति, जिला और राज्य स्तर पर पेयजल की नियमित जांच आदि की व्यवस्था की गई। भारत सरकार के जल संसाधन मंत्रालय के अनुसार 2008 तक शहरी क्षेत्र की 96 प्रतिशत आबादी तथा को ग्रामीण क्षेत्रों में 73 प्रतिशत आबादी को पेयजल उपलब्ध था। पेयजल एवं स्वच्छता मंत्रालय, भारत सरकार की वार्षिक रिपोर्ट 2015–16 अनुसार भारत निर्माण के चरण I और II के दौरान 55067 अनाच्छादित बसावटों, 3.58 लाख निचली श्रेणी में लौट आई बसावटों और 2017 गुणवत्ता प्रभावित बसावटों को स्वच्छ पेयजल की उपलब्धता करा दी गई है। स्वच्छ पेयजल के निमित्त भारत में 35 लाख से अधिक चापाकल तथा एक लाख पाइप जलापूर्ति योजनाएं चलाई गईं। यद्यपि इनके रखरखाव पर हर साल दो हजार करोड़ रुपये खर्च होते हैं, फिर भी अधिकतर चापाकलों/जलापूर्ति मशीनों की मरम्मत समय पर नहीं होती और गांवों में उपयुक्त मिस्त्री उपलब्ध नहीं होते। यह हमारी शिक्षा व्यवस्था का भी भारी दोष है। दसवीं/बारहवीं कक्षा उत्तीर्ण विद्यार्थी भी उनकी मरम्मत जैसे सामान्य हुनरों से लैस नहीं होते। इतना ही नहीं, पश्चिमी बंगाल, बिहार के कई जिलों के कुंओं, चापाकलों और तालाबों/झीलों के जल में फ्लोराइड, आर्सेनिक या लोहा की अत्यधिक मात्रा की उपलब्धता, पेयजल की दूसरी समस्या है। बिहार में एक अप्रैल 2011 को 17 प्रतिशत टोलों में जल की गुणवत्ता खराब पाई गई। इस समय 1113 टोलों के जल में आर्सेनिक, 3380 टोलों में फ्लोराइड तथा 14010 टोलों में लोहे की मात्रा अनुमान्य मानक से अधिक पाई गई। तीसरी समस्या पेयजल का खारापन होता है जिसके कारण भोजन देर से पकता है (जिससे ज्यादा ईंधन लगता है) और उसे पीने में

कड़वा स्वाद मिलता है जो पाचक नहीं होता। जलजनित बीमारियों के कारण पूरे विश्व में प्रत्येक आठ सेकेंड में एक बच्चा मर जाता है। दूसरे, विकासशील देशों में आधी आबादी किसी न किसी जलजनित बीमारी की शिकार है। तीसरे, विकासशील देशों में सभी बीमारियों में अस्सी प्रतिशत बीमारियां दूषित जल के कारण होती हैं। दूषित पेयजल के कारण विश्व में तीस लाख से अधिक लोग हर साल मर जाते हैं। पेयजल को शुद्ध करने की पुरानी तकनीकें हैं जैसे ओजोनीकरण, क्लोरीनेशन एवं कृत्रिम यू. वी. विकिरण, मगर इन तीनों तकनीकों में अधिक समय, कुशल श्रम और ज्यादा पूंजी लगती है। फिर पारंपरिक तकनीक यथा जल को उबालने में काफी ईंधन खर्च होता है। फिर हैलोजन या कैल्शियम हाइपोक्लोराइड टिकिया से भी जल को शुद्ध किया जाता है। मगर यह भी खर्चीली पद्धति है और यह पद्धति पर्यावरणीय दृष्टि से त्रुटिपूर्ण है और आम आदमी द्वारा इनके इस्तेमाल से असुरक्षा पैदा हो सकती है। ऐसी स्थिति में सौर ऊर्जा से शुद्धिकरण पद्धति ज्यादा उपयोगी है क्योंकि ऐसी इकाई आसानी से एक जगह से दूसरी जगह ले जाई जा सकती है। यह कम लागत वाली है (इसमें अधिकतम एक हजार रुपये की लागत लगती है), अतः इसकी बड़ी इकाइयां भी स्थापित की जा सकती हैं। इसकी सामग्रियां स्थानीय तौर पर उपलब्ध होने के कारण इसे स्थानीय तौर पर तैयार किया जा सकता है। इसके लिए खाली बोतलें सर्वत्र आसानी से उपलब्ध होती हैं तथा वे ज्यादा तापमान सह सकती हैं।

यहां विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि भारत जैसे विकासशील देशों में जल संचयन और उद्योग के कई पारंपरिक तरीके रहे हैं। राजस्थान और गुजरात में बावड़ी या बाव (स्टेपवेल), तनका, तोबा, झलरा, खदिन, जोहाड़, एनिकट आदि सदियों से मौजूद रहे हैं जिनमें पर्याप्त मात्रा में वर्षा जल संचित होता रहा है और इसका उपयोग घरेलू कार्यों तथा कृषि कार्यों हेतु होता रहा है। सभी गांवों, कस्बों, नगरों में तालाब/झील, राजा, महाराजा, जमींदार, जागीरदार खुदवाते थे। इन तालाबों के आगोर (आवाह क्षेत्र) से वर्षा की एक बूंद भी बेकार नहीं जाती थी और वे पवित्र माने जाते थे जिसके कारण कोई जूता पहनकर वहां नहीं जाता था और वहां मल–मूत्र त्यागने का सवाल ही नहीं था। शुभू पटवा के अनुसार भारत की तीन प्रतिशत भूमि पर पहले तालाब बने थे और उनमें वर्षा का 25 प्रतिशत जल इकट्ठा होता था। मगर बाद में तालाबों का अतिक्रमण विभिन्न प्रबल तबकों, समूहों द्वारा कर लिया गया। फिर इंदिरा गांधी नहर परियोजना (राजस्थान नहर) के लूणकरनसर लिफ्ट सिंचाई क्षेत्र में, नहर के जल की सिंचाई से वर्ष 1974–75 से कई वर्षों तक मूंगफली का काफी उत्पादन हुआ मगर कालांतर में वहां की सैकड़ों बीघे जमीन बंजर हो गई। किसानों के 105 चकों में से 30 चकों (200 बीघे जमीन) की उर्वरता नष्ट हो गई। वहां की मिट्टी ज्यादा जल नहीं झेल सकती थी किंतु मूंगफली की खेती के लिए काफी जल दिया गया। बीकानेर के पास भीनासर गांव में 1984 में गोचर चारागाह और पर्यावरण के लिए आंदोलन शुरू हुआ और करीब 5000 बीघा जमीन गोचर के रूप में सुरक्षित रखी गई। इसमें थोड़े जल का उपयोग और जन–भागीदारी से गोचर–चारागाह बनाने और बचाने का प्रयोग सफल और सार्थक सिद्ध हुआ। अकाल से निजात पाने का यह स्थायी विकल्प अन्यत्र भी बन सकता है। राजस्थान के बीकानेर इलाके में लगभग हर किसान परिवार का कम से कम एक 'तनका' होता रहा है और कुछ सामूहिक 'तनके' होते रहे हैं। मगर अब सारे सामूहिक तनकों का अस्तित्व मिट गया है। कुछ निजी तनकों का ही रखरखाव होता है, जबकि ये वर्षा जल को बचाने के मुख्य साधन रहे हैं। वर्षा जल को संरक्षित न करने से राजस्थान में कई नदियां सूख गईं और जलस्तर करीब पांच सौ फीट नीचे चला गया। सामूहिक तनके पंचायत घर विद्यालय और बड़े गांवों में बनाए जाते थे। ये गोलाकार और गहरे होते थे। दिल्ली में आजादी के समय करीब आठ सौ जलाशय थे जो आवासों, सड़कों, मकानों, संस्थाओं और उद्योगों के स्थापित हो जाने के कारण लुप्त हो गए। जिसके कारण थोड़ी भी वर्षा होने पर कई इलाकों में जलजमाव हो जाता है और बाढ़ की सी स्थिति पैदा हो जाती है। बिहार में 'आहर–पइन' नामक देशज जल संचयन एवं सिंचाई पद्धति प्राचीन काल से उपयोग में लाई जा रही है। फिर कुंओं से जल निकासी की कई विधियां भारत के विभिन्न इलाकों में प्रचलित हैं जैसे 'पुर' पद्धति में मोटी रस्सी और चमड़े की 'मोट' के सहारे बैलों को बांधकर जल बाहर निकाला जाता था। दूसरे, रहट पद्धति में बैलों को नाधकर (कोल्हू की तरह) घुमाया जाता था और

टिन के डिब्बों की श्रृंखला में जल बाहर आता था। यह विधि फारस (पर्सिया) से आई थी, इसीलिए उसे 'पर्सियन व्हील' कहा जाता है। कुएं से 'चरखी' (हाथ से चलाकर) के द्वारा भी जल सिंचाई के लिए निकाला जाता है। फिर तालाब से जल निकालने की प्राचीन विधि 'दुगला' या 'बेड़ी' रही है जिसमें बांस के बने दौरा–दौरी जैसे पात्र को तारकोल से लीपकर रस्सी के सहारे दो आदमी जल 'गोल' (गड्ढा) से बाहर उलीचते हैं। इसके अलावा इंजन लगाकर तालाब से जल निकाला जाता है और खेतों तक पहुंचाया जाता है।

अब गांवों में भी तालाबों का स्वरूप बदल गया है क्योंकि प्रायः दबंग लोगों ने उनका अतिक्रमण करके खेत, बाग, आवास आदि बना लिए हैं। देशज ज्ञान पद्धति से 'कैसे जानें, 'कैसे करें' आदि का सरल तरीका होता है क्योंकि स्थानीय स्तर पर किसानों की कई पीढ़ियों के अनुभव का यह संचित ज्ञान होता है। वह पर्यावरण हितैषी भी होता है, वह कम लागत वाला होता है, उसे अपनाना आसान होता है। उसमें श्रम अधिक और पूंजी कम लगती है (जबकि आधुनिक प्रयोग विधियों में श्रम कम, पूंजी अधिक लगती है), और वह टिकाऊ एवं आसानी से रखरखाव करने लायक होती है। वर्षा जल को शुद्धतम माना जाता है मगर बड़े–बड़े शहरों में बड़ी इमारतों में भी वर्षा जल के संचयन की व्यवस्था प्रायः नहीं होती है और दिल्ली जैसे महानगरों में गर्मी में यमुना नदी से जलापूर्ति करने में कठिनाई होती है। यही हाल मुंबई, कोलकाता आदि महानगरों का भी है।

मगर जैसा कि विज्ञान एवं पर्यावरण केंद्र (नई दिल्ली) ने समय–समय पर कई शोधों में पाया है, बोतलबंद जल में भी यह शुद्धता नहीं मिलती बल्कि 'मिनरल वाटर' के नाम पर धोखा देकर काफी राशि ली जाती है, जबकि उसमें कीटनाशक और रासायनिक उर्वरक की मात्रा अनुज्ञेय मात्रा से काफी अधिक पाई जाती है। विभिन्न ब्रांडों के शीतल पेय पदार्थों की स्थिति भी ऐसी ही है। वे भूजल का दोहन लालच के लिए करते हैं। जबकि उस पर स्थानीय समुदायों का पहला और अंतिम हक है। यह ध्यान देने योग्य ऐतिहासिक तथ्य है कि भारत में नदी, जल, जंगल, जमीन, पहाड़, वनस्पति, पशु–पक्षी, वन्य जीव आदि का स्वामित्व राज सत्ता के पास नहीं रहा बल्कि व्यावहारिक लोकतंत्र के रूप में उनका उपयोग करने वाला ही उनका संरक्षक भी रहा। मगर ब्रिटिश औपनिवेशक सत्ता ने ऐसी समृद्ध परंपरा को नष्ट करके उन पर सरकारी नियंत्रण कायम किया।

प्रदूषित जल के कारण 80 प्रतिशत बीमारियां फैलती हैं जिनमें से कुछ प्रमुख बीमारियों में प्रदूषित जल से फैलने वाली बीमारियां एवं फैलाने वाले जीव (ऑर्गनिज्म), उदर आंत्रशोथ टाइफॉयड (आंत्रज्वर), हैजा पैराटाइफॉयड अतिसार इंटराटिस (पेट दर्द, कै, सिर घूमना), यकृत–शोथ पेचिस (जीवाणुजनित), संक्रमणशील हेपाटाइटिस (बुखार, काफी सिर दर्द, भूख की कमी, पेट दर्द, पीलिया, लीवर बढ़ना), जियार्डिया (दस्त, पेट में मरोड़, थकावट, पेट फूलना), आंव वाला पेचिस (अमीबिक डिसेंटरी) आदि प्रमुख हैं।

भारत में अभी तक जल उपयोगकर्ताओं में चेतना नहीं आई है और वे संगठित प्रयास नहीं करते हैं जबकि अमरीका, स्पेन, चीन, मैक्सिको आदि में जल उपयोगकर्ताओं के संघ काफी संगठित एवं सक्रिय हैं। फिर भी 2010 तक भारत में कुल 57000 जल उपयोगकर्ता संघ बन गए थे। तब तक मात्र तेरह राज्यों में ऐसे संघों के बारे में कानून बन सके थे। इस मायने में आंध्र प्रदेश सबसे ज्यादा सक्रिय है। जल की प्रत्येक बूंद से ज्यादा फसल और आय प्राप्त करने की योजना को अमलीजामा पहनाने की जरूरत है। यह तभी संभव होगा जब इसमें किसानों, कृषि विश्वविद्यालयों/महाविद्यालयों/केंद्रों, स्वयंसेवी संस्थाओं, ग्राम सेवकों आदि की समुचित भागीदारी, परस्पर विश्वास एवं अंतर–निर्भरता सतत् रूप से होगी। दुर्भाग्यवश पिछले तीन–चार दशकों से कृषि विस्तार कार्य पूर्णतः उपेक्षित है और प्रयोगशालाओं के शोधों (सिद्धांत) और किसानों के खेतों (व्यवहार) में दूरी बढ़ती जा रही है। कई सिंचाई पद्धति जैसे 'श्री' (सिस्टम ऑफ राइस इंटेंसीफिकेशन) विधि से अधिक उत्पादन के साथ–साथ करीब बत्तीस प्रतिशत जल की भी बचत होती है। यदि इस पद्धति को भारत के कुल सिंचित धान क्षेत्र के चौथाई हिस्से (5.3 मिलियन

हेक्टेयर) में भी अपना लिया जाए, तो इससे करीब पांच सौ करोड़ रुपये की बचत होगी। यदि समय रहते, भारत के जल संचयन और संरक्षण की समुचित व्यवस्था जमीनी स्तर पर नहीं की गई, तो अगले पचास वर्षों में विषम परिस्थिति पैदा होगी जिसमें गृह युद्ध भी शामिल है। यों कई कृषि वैज्ञानिकों, पृथ्वी वैज्ञानिकों, भूगर्भशास्त्रियों आदि ने जल की समस्या की विकरालता के मद्देनजर कहा है कि तीसरा विश्वयुद्ध संभवतः जल को लेकर लड़ा जाएगा, क्योंकि कई देशों के बीच जल स्रोतों यथा नदियों, बांधों आदि को लेकर टकराव और संघर्ष की स्थिति बदतर होती जा रही है। उल्लेखनीय है कि सहस्त्राब्दी विकास लक्ष्यों (मिलेनियम डेवलपमेंट गोल्स) में से एक लक्ष्य 2015 तक सुरक्षित पेयजल न पाने वाली आबादी को आधा घटाना था तथा जल का गैर–टिकाऊ दोहन समाप्त करना था, मगर हम यह लक्ष्य प्राप्त करने में असमर्थ रहे। शायद इसका प्रमुख कारण यह है कि हम भारतीय अपनी 'अरण्य संस्कृति' (जल, जंगल, जमीन, खदान) को भूल गए हैं और आधुनिकता के नाम पर हमने पाश्चात्य संस्कृति की प्रकृति के दोहन–शोषण की प्रवृत्ति को अपना लिया है। अस्तु, हमें पुनः प्रकृति की ओर लौटना होगा तथा जनहित एवं पारिस्थितिकी हित में प्रकृति एवं संस्कृति में समरसता कायम करनी होगी।